



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

आदेश आरक्षित: 23.03.2021

आदेश पारित किया गया: 07.06.2021

रिट याचिका (सीआर.) संख्या 629/2020

नितिन आर्यन उर्फ सतीश कुमार सोनवानी, आ 0 रामलाल सोनवानी, उम्र लगभग 25 वर्ष,
निवासी- एलआईजी, 229 निहारिका, पुलिस थाना-कोरबा, जिला कोरबा (छ 0 ग 0)

.....याचिकाकर्ता

बनाम

1. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा सचिव, गृह विभाग, महानदी भवन, नया रायपुर, जिला रायपुर
(छ 0 ग 0)
2. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा विधि मंत्रालय महानदी भवन, नया रायपुर, जिला रायपुर,
(छ 0 ग 0)
3. जेएमएफसी, दुर्ग, जिला दुर्ग (छ 0 ग 0)
4. पुलिस महानिदेशक, पुलिस मुख्यालय, नया रायपुर, जिला रायपुर (छ 0 ग 0)
5. अधीक्षक केन्द्रीय जेल, दुर्ग, जिला दुर्ग (छ 0 ग 0)

.....उत्तरवादी

याचिकाकर्ता की ओर से : सुश्री रीना सिंह, अधिवक्ता,
मामला संख्या 1,2,4 और 5/राज्य के लिए : श्री जितेन्द्र पाली, उप महालेखाकार श्री प्रसून
अग्रवाल, अधिवक्ता, न्याय मित्र

माननीय श्री न्यायामूर्ति संजय के0 अग्रवाल

सी.ए.वी. आदेश

1. यह मामला दिनांक 23.03.2021 को आदेश कि लिए सुरक्षित रखा गया था, परंतु आदेश
दिए जाने से पूर्व जिला कलेक्टर द्वारा दिनांक 14.04.2021 से लॉकडाउन लगा दिया गया,
जिसके परिणामस्वरूप, यह न्यायालय भी बंद रहा और इस न्यायालय के बंद होने के बाद



लॉकडाउन की निरंतरता के दौरान दिनांक 10.05.2021 से ग्रीष्मकालीन अवकाश शुरू हो गया, इसलिए यह आदेश आज यानी दिनांक 07.06.2021 को ग्रीष्मकालीन अवकाश के बाद न्यायालय को फिर से खोलने के बाद सुनाया जा रहा है।

2. “शीघ्र सुनवाई का अधिकार भारत में स्पष्ट रूप से संवैधानिक अधिकार नहीं है, परंतु यह निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार में अंतर्निहित है जिसे संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का भाग माना गया है।”

3. उपरोक्त विधिक कथन ओ. चिन्नाप्पा रेड्डी जे. द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की ओर से टी.वी. वथीस्वर्ण बनाम तमिलनाडु राज्य¹ (पैरा-19) के मामलों में शीघ्र सुनवाई के अधिकार के संबंध में बोलते हुए दिया गया था। शीघ्र सुनवाई आपराधिक न्याय का सार है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि सुनवाई में विलम्ब अपने आप में न्याय से इंकार करने का मामला है (कृपया हूसैनारा खातून और अन्य (I) बनाम वी. गृह सचिव, बिहार राज्य² देखें।)

4. शीघ्र सुनवाई के अपने अधिकार के उल्लंघन और परिणामस्वरूप न्याय से इंकार की शिकयत करते हुए, याचिकाकर्ता ने यह रिट याचिका दायर की है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 और 120 बी के तहत अपराध करने के लिए दिनांक 14.05.2012 से फैसला सुनाए जाने की तारीख यानी 08.11.2016 तक यानी 4 साल, 6 महीने और 7 दिन जेल में रहा, जबकि उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 के तहत अपराध के लिए केवल तीन साल और भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी के तहत अपराध के लिए तीन साल की सजा सुनाई गयी है और सजाए साथ-साथ चलाने का निर्देश दिया गया है, इस प्रकार, यह स्पष्ट मामला है जहां भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित शीघ्र सुनवाई के उसके संवैधानिक अधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है, और जिसके लिए वह निम्नलिखित तथ्यात्मक आधार पर प्रतिवादियों से संयुक्त रूप से और अलग-अलग उचित मुआवजे का हकदार है।

4.1 याचिकाकर्ता सहित पांच अन्य सह-अरोपियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 और 120 बी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दिनांक 14.05.2012 को क्षेत्राधिकार वाली आपराधिक न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दायर किया गया था और उक्त अपराध के

¹ AIR 1979 SC 1360

² (1980) 1 SCC 31



अनुसरण में उन्हें दिनांक 14.05.2012 को हिरासत में लिया गया था। उनके अनुसार उन्होंने इस न्यायालय में नियमित जमानत के लिए कई आवेदन किए, लेकिन सभी खारिज कर दिए गए, हालांकि इस न्यायालय ने भी दो बार दिनांक 22.04.2013 और दिनांक 24.06.2014 को विचारण न्यायालय को प्रकरण में तेजी लाने का निर्देश दिया, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकल सका और प्रकरण में तेजी नहीं आ सकी और निष्कर्ष नहीं निकल सका और याचिकाकर्ता जेल में ही रहा, विचाराधीन को दिनांक 14.05.2012 को अभिरक्षा में लिया गया था। उनके अनुसार, उन्होंने इस न्यायालय में नियमित जमानत के लिए कई आवेदन किए लेकिन सभी खारिज कर दिए गए, हालांकि, इस न्यायालय ने भी दो बार 22.04.2013 और 24.06.2014 को ट्रायल कोर्ट को प्रकरण में तेजी लाने का निर्देश दिया, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकल सका और मुकदमें में तेजी नहीं आ सकी, और निष्कर्ष नहीं निकल सका और याचिकाकर्ता जेल में ही रहा, विचाराधीन बंदी के रूप में पीड़ित रहा और अंततः ट्रायल कोर्ट ने अपने फैसले दिनांक 08.11.2016 द्वारा याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 और 120 बी के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया और भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 के तहत तीन साल के लिए सश्रम कारावास और 300 रुपये और तीन साल के लिए सश्रम कारावास और जुर्माने के व्यतिक्रम में 200 रुपये का जुर्माना की सजा सुनाई और साथ ही सभी सजाओं को एक साथ चलाने का निर्देश दिया।

4.2 निर्णय की तिथि अर्थात् 08.11.2016 से अब तक याचिकाकर्ता 4 वर्ष 6 माह 7 दिन की अवधि तक जेल में रह चुका है। तथा उसे दिनांक 08.11.2016 को तुरंत रिहा कर दिया गया था।

5. अब इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता का मामला यह है कि “शीघ्र सुनवाई का अधिकार” उसका मौलिक अधिकार है और उचित समय के भीतर सुनवाई पुरी न होने के कारण याचिकाकर्ता उस अवधि से अधिक समय तक जेल में रहा, जितनी अवधि के लिए उसे अब सुनवाई पुरी होने पर सजा सुनाई गयी है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन है और जिसके लिए वह तत्काल रिट याचिका को स्वीकार करके प्रतिवादियों से संयुक्त रूप से और अलग-अलग लगभग 01 वर्ष 06 महीने और 08 दिनों के लिए अपनी उक्त अवैध हिरासत के लिए 30 लाख रुपये मुआवजा पाने का हकदार है।



6. राज्य द्वारा जवाब प्रस्तुत किया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ यह भी कहा गया है कि जिस तरह से रिट याचिका तैयार की गयी है, और दाखिल की गयी है, वह विचारणीय नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता को धोकाधड़ी के गंभीर अपराध में संलिप्त पाया गया है और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 और 120 बी के तहत उक्त अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है और रिट याचिका में देरी और लापरवाही बरती गयी है। इसलिए रिट याचिका खारिज किये जाने लायक है, आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रदर्शित नहीं किया गया है कि प्रतिवादियों की गलती के कारण प्रकरण जल्द से जल्द समाप्त नहीं हो सका। यह भी दलील दी गयी है कि याचिकाकर्ता की अभिरक्षा कानून और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार न्यायिक हिरासत थी, इसलिए इसे अवैध अभिरक्षा नहीं कहा जा सकता। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सार्वजनिक कानून उपाय का सहारा लेकर मुआवजा मांगने वाले याचिकाकर्ता को यह साबित करना होगा कि असंवैधानिक आदेश का उल्लंघन किया गया है और भारत के संविधान के प्रावधानों के विपरित है, इसलिए यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन का मामला नहीं है और जिस तरह से रिट याचिका तैयार की गयी है और दायर की गयी है, उसे खारिज किया जाना चाहिए, क्योंकि जवाबी शपथपत्र दायर नहीं किया गया है।

7. याचिकाकर्ता की विद्वान वकिल सुश्री रीना सिंह ने कहा कि हालांकि याचिकाकर्ता को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 और 120 बी के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था, और प्रत्येक मामले में तीन साल के लिए सश्रम कारावास की सजा सुनाई गयी थी और उन्हें एक साथ चलने का आदेश दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता 4 साल 6 महीने और 7 दिन तक जेल में रहा। दूसरे शब्दों में वह उस पर लगायी गयी सजा की अवधि से 1 साल 6 महीने और 7 दिन से अधिक समय तक जेल में रहा। उन्होंने आगे कहा है कि याचिकाकर्ता भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 ए में निर्धारित कानून के प्रावधानों के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार था, ऐसे में निर्धारित समय के भीतर प्रकरण का निष्कर्ष नहीं निकलना और याचिकाकर्ता को दी गयी सजा से अधिक अवधि के लिए न्यायिक हिरासत में रखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, वह रुदुल साह बनाम बिहार राज्य³



और राजस्थान राज्य बनाम श्रीमती विद्यावती एवं अन्य⁴ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का हवाला देगी।

8. न्यायमित्र के रूप में उपस्थित विद्वान वकिल श्री प्रसून अग्रवाल ने कहा कि श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ और अन्य⁵, हुसैनारा खातून (सुप्रा) और अब्दूल रहमान अंतुले और अन्य बनाम आर 0 एस 0 नायक और अन्य⁶ के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय के मद्दे नजर भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत “शीघ्र सुनवाई का अधिकार” एक अभियुक्त का मौलिक अधिकार है उन्होंने आगे कहा है कि अब्दूल रहमान अंतुले (सुप्रा) में उनके माननीय न्यायाधीशों ने शीघ्र सुनवाई के संबंध में दिशा निर्देश दिये हैं, जिसे पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य⁷ में आगे बरकार रखा गया है, इस प्रकार याचिकाकर्ता मुआवजे कि लिए हकदार होगा क्योंकि शीघ्र सुनवाई के उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है, और उसे उपरोक्त अपराधों के लिए विचाराधीन कैदी के रूप में बिताए गए समय से कम सजा सुनाई गयी है।

9. प्रतिवादी संख्या 1,2,4 और 5/राज्य के विद्वान उप महाधिवक्ता श्री जितेन्द्र पाली ने दलील दी कि याचिकाकर्ता किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है क्योंकि उसके शीघ्र सुनवाई के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ है और वह अपराध के लिए फैसले की तारीख तक न्यायिक हिरासत में रहा है जिसे विचारण न्यायालय ने साबित पाया है। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रहा है कि मामले को समाप्त करने में देरी के लिए अभियोजन पक्ष की गलती है और इस तरह तैयार और दायर की गयी रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और खारिज कि जाने योग्य है।

10. मैंने पक्षों के विद्वानों अधिवक्ताओं के साथ-साथ विद्वान न्यायमित्र को भी सुना है, उनके उपर दिए गए परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का भी अत्यंत सावधानी से अध्ययन किया है।

11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के सुनने तथा अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ आते हैं:

4 AIR 1962 SC 933

5 AIR 1978 SC 597

6 (1992) 1 Scc 225

7 (2002) 4 SCC 578



- (i) क्या “शीघ्र सुनवाई का अधिकार” भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार है और क्या याचिकाकर्ता के शीघ्र सुनवाई के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है ?
- (ii) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका याचिकाकर्ता को उसकी कथित हिरासत के लिए मुआवजा देने के लिए उपर्युक्त उपाय है ?
- (iii) क्या “जीवन का अधिकार” भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार है?
- (iv) क्या याचिकाकर्ता मुआवजे का हकदार है तथा मुआवजे की मात्रा क्या है?

प्रश्न क्रमांक 1 का उत्तर:-

12. श्रीमती मेनका गांधी (सुप्रा) मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि लोगों के मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में राज्य का यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र सुनवाई सुनिश्चित करे तथा आपराधिक मामलों की सुनवाई में अत्यधिक देरी से बचें जिससे न्यायालय में गंभीर चूक हो सकती है।

13. हुसैनारा खातून (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्रदान करता है कि उसे कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित किया जायेगा, और यह प्रक्रिया उचित निष्पक्ष और न्याय संगत होनी चाहिए। हुसैनारा खातून (सुप्रा) में संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या पर अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप से विचार किया गया तथा निम्न प्रकार से निर्णय दिया गया।

“85. हमारे समक्ष एक अन्य गंभीर प्रश्न आया जो शीघ्र सुनवाई के अधिकार के उल्लंघन से उत्पन्न होने वाले परिणामों से संबंधित है अभियुक्त के वकिल ने शीला बारसे⁸ तथा स्ट्रंक⁹ में दी गयी टिप्पणियों के आधार पर तर्क दिया है कि एक मात्र परिणामों आरोपों को खारिज करना तथा/या दोषसिद्धि है, जैसा भी मामला हो सामान्यतः ऐसा हो सकता

8 (1986) 1 SCC 654

9 37 L Ed 2d 56



है। लेकिन हमें नहीं लगता कि न्यायालय के लिए यही एक मात्र आदेश है। किसी दिये गये मामले में, अपराध की प्रकृति सहित तथ्य ऐसे हो सकते हैं कि आरोपों को खारिज करना न्याय हित में नहीं हो सकता। आखिरकार, प्रत्येक अपराध- विशेषकर आर्थिक अपराध, सरकारी अधिकारियों से संबंधित अपराध तथा खाद्य पदार्थों में मिलावट समाज के विरुद्ध अपराध है। वास्तव में समाज-राज्य ही अपराधी पर मुकदमा चलाता है। इस संबंध में हम चंपालाल पुंजाजी शाह¹⁰ में इस न्यायालय की टिप्पणियों को याद कर सकते हैं। ऐसे मामलों में जहां आरोपों/दोषसिद्धियों को रद्द करना न्याय हित में नहीं हो सकता है, न्यायालय को ऐसे उचित आदेश पारित करने की स्वतंत्रता होगी, जिन्हें मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसे आदेश मामले की सुनवाई में तेजी लाने और एक विशेष निर्धारित अवधि के भीतर उसका निष्कर्ष निकालने, सजा में कमी करने के आदेश के रूप में हो सकते हैं, जहां मामला मुकदमें की सुनवाई और दोषसिद्धि के बाद आता है, इत्यादि।”

14. अब्दुल रहमान अंतुले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के सिद्धान्त पर सुप्रीम कोर्ट ने पी. रामचंद्र राव (सुप्रा) के मामले में आगे विचार किया और इसे निम्नानुसार माना है:

“29. उपरोक्त सभी करणों से, हमारा विचार है कि कॉमन कॉज केस (i) (कॉमन कॉज (ii) में संशोधित) और राज देव शर्मा (i) और (ii) और में न्यायालय सीमाओं की अवधि निर्धारित नहीं कर सकता था, जिसके आगे आपराधिक मामले या आपराधिक कार्यवाही की सुनवाई जारी नहीं रह सकती है और उसे अनिवार्य रूप से बंद कर दिया जाना चाहिए और उसके बाद आरोपी को बरी करने या आरोपमुक्त करने का आदेश दिया जाना चाहिए, निष्कर्ष में हम मानते हैं:-

(1) एआर अंतुले के मामले में उक्ति सही है और अभी भी लागू है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 21 से उभरने वाले प्रस्ताव और एआर अंतुले के मामलों में दिशा निर्देशों के रूप में निर्धारित शीघ्र सुनवाई के अधिकार की व्याख्या करते हुए, शीघ्र सुनवाई के अधिकार का पर्याप्त रूप से ध्यान रखा गया है। हम उक्त प्रस्तावों को कायम रखते हैं और उनकी पुष्टि करते हैं।

¹⁰ (1981) 3 SCC 610



(3) एआर अंतुले के मामले में निर्धारित दिशा निर्देश संपूर्ण नहीं है, बल्कि केवल उदाहरणात्मक हैं। उनका उद्देश्य कठोर नियमों के रूप में काम करना या स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला की तरह लागू करना नहीं है। उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगी। सभी स्थितियों का पूर्वानुमान लगाना कठिन है और कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

(4) सभी आपराधिक कार्यवाहियों के समापन के लिए एक बाहरी सीमा निर्धारित करना न तो उचित है, न ही व्यवहार्य है, न ही न्यायिक रूप से स्वीकार्य है। कॉमन कॉज (I), राज देव शर्मा (I) और राज देव शर्मा (II) में दिए गए कई निर्देशों में निर्धारित समय-सीमा या सीमा-बाधाएं इस तरह निर्धारित नहीं की जा सकती थी, और वे अच्छे कानून नहीं हैं। आपराधिक न्यायालय केवल समय बीत जाने के कारण मुकदमें या आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं है। जैसा की कॉमन कॉज केस (I) राज देव शर्मा केस (I) और (II) में दिये गये निर्देशों द्वारा निर्धारित किया गया है। अधिक से अधिक उन निर्णयों में निर्धारित समय-सीमाओं को मुकदमें या कार्यवाही से जुड़ी न्यायालयों द्वारा अनुस्मारक के रूप में लिया जा सकता है। जब उन्हें अपने सामने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर अपने कानूनी ज्ञान को लागू करने के लिए राजी किया जा सकता है और एआर अंतुले के मामले में बताए गए कई प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया जा सकता है और यह तय किया जा सकता है कि क्या मुकदमे या कार्यवाही में इतनी देरी हो गई है कि उसे दमनकारी और अनुचित कहा जा सकता है। ऐसी समय-सीमा को किसी भी न्यायालय द्वारा मुकदमे या कार्यवाही को आगे जारी रखने में बाधा के रूप में नहीं माना जायेगा और ना ही न्यायालय को उसे समाप्त करने तथा अभियुक्त को दोषमुक्त या दोषमुक्त करने के लिए अनिवार्य रूप से बाध्य किया जायेगा।

(5) आपराधिक न्यायालयों को अपनी उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए जैसा कि दंड प्रक्रिया की धारा 309, 311 और 258 के तहत उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करके त्वरित सुनवाई के अधिकार को प्रभावी बनाना। एक तर्क और समर्पित विचारण न्यायाधीश किसी भी दिशा निर्देश से बेहतर ऐसे अधिकार का रक्षक साबित हो सकता है। उचित मामलों में उचित राहत या उचित दिशा निर्देश प्राप्त करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया जा सकता है।



(6) यह भारत संघ और राज्य सरकारों को उनके संवैधानिक दायित्व की याद दिलाने का उपयुक्त अवसर है कि न्याय पालिका को आवश्यक धन, जन शक्ति और बुनियादी ढांचा प्रदान करके मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से मजबूत किया जाये। हमें उम्मीद है और भरोसा है कि सरकारें कार्यवाही करेंगी।

हम दिनांक 19.09.2000 और 26.04.2001 के संदर्भ आदेशों में पुछे गये प्रश्नों का उत्तर उपर्युक्त शर्तों के अनुसार देते हैं “

15. पंकज कुमार बनाम महाराष्ट्र और अन्य¹¹ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती मेनका गांधी (सुप्रा), हुसैना खातून आई (सुप्रा), अब्दूल रहमान अंतुले (सुप्रा) पी.रामचंद्र राव (सुप्रा) और, “कॉमन कॉज” एक पंजीकृत सोसायटी अपने निदेशक के माध्यम से बनाम भारत संघ और अन्य¹² में अपने सभी निर्णयों पर विचार किया और उनकी समीक्षा की और माना की सभी आपराधिक प्रकरणों में शीघ्र सुनवाई का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक अविभाज्य अधिकार है। यह इस प्रकार देखा गया:-

“22. इसलिए अच्छी तरह से स्थापित है कि सभी आपराधिक उत्पीडन में शीघ्र सुनवाई का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक अविभाज्य अधिकार है यह अधिकार न केवल अदालत में वास्तविक कार्यवाही के लिए लागू है , बल्कि इसके दायरे में पूर्ववर्ती पुलिस जाँच भी शामिल है। शीघ्र सुनवाई का अधिकार सभी आपराधिक उत्पीडनो पर समान रूप से लागू होता है और यह किसी विशेष श्रेणी के मामलों तक सिमित नहीं है।

23. प्रत्येक मामले में जहां शीघ्र सुनवाई का अधिकार का उल्लंघन होने का आरोप लगाया गया है, न्यायालय को उपर उल्लेखित सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संतुलन बनाना होगा और प्रत्येक मामलों में यह निर्धारित करना होगा कि किसी दिये गये मामले में त्वरित सुनवाई के अधिकार से इंकार किया गया है या नहीं। जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी अभियुक्त के शीघ्र सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, आरोप या दोषिसिद्धी, जैसा भी मामला हो, रद्द कि जा सकती है जब तक की न्यायालय को यह महसुस न हो की अपराध की प्रकृति और अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों को देखते हुए कार्यवाही को रद्द करना न्याय के हित में नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में , न्यायालय के लिए उचित आदेश देना खुला है, जैसा की वह उचित

11 (2008) 16 SCC 117

12 (1996) 4 SCC 33



और न्यायासंगत समझे, जिसमें सुनवाई के समापन के लिए समय का निर्धारण भी शामिल है”

16. इस प्रकार, उपर्युक्त निर्णयों से प्राप्त विधि के सिद्धांत से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि आपराधिक मामले में शीघ्र सुनवाई का अधिकार अभियुक्त का मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण अधिकार है तथा इसका उल्लंघन न्याय से वंचित करने के समान होगा तथा इसे न्याय की गंभीर विफलता होगी।

प्रश्न क्रमांक 2 का उत्तर:-

17. इस संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध वकिल भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 पर भरोसा करेंगे और दृढ़ता से प्रस्तुत करेंगे की प्रतिवादियों ने राज्य द्वारा उन्हे दी गयी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए याचिकाकर्ता को गैर कानूनी तरिके से अभिरक्षा में लिया, जिसके परिणामस्वरूप भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ वह आगे प्रस्तुत करेंगे की राज्य उसके अधिकारियों द्वारा उसे जीवन के अधिकार में किये गये हस्तक्षेप के लिए उसकी शिकायतों की निवारण का एक मात्र उचित और वैध तरिका मौद्रिक मुआवजा देना है और उसके मौलिक अधिकार और मानवाधिकार के उल्लंघन के लिए राज्य द्वारा मुआवजे के लिए सार्वजनिक कानून में दावा स्वीकार्य है। इसलिए, प्रतिवादी राज्य भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने वाले कृत्य के लिए मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है।

18. **श्रीमती विद्यावती** (सुप्रा) के मामलों में, उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य के स्वामित्व वाली और उसके द्वारा अनुरक्षित जीप को लापरवाही से चलाने के कारण राजस्थान राज्य को क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी माना है और यह निम्नानुसार माना है

“अब जबकि हमने अपने संविधान द्वारा, सरकार का एक गणतांत्रिक स्वरूप स्थापित कर लिया और इसका एक उद्देश्य एक समाजवादी राज्य की स्थापना करना है जिसमें विविध औद्योगिक और अन्य गतिविधिया होंगी, जिसमें बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार मिलेगा तो सिद्धांततः यह सार्वजनिक हित में कोई औचित नहीं है कि राज्य को अपने सेवक के अत्याचार पूर्ण कृत्य के लिए उत्तरदायी न ठहराया जाये।”



19. कस्तुरी लाल बनाम यूपी राज्य¹³ के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने पुराने 'राजा प्रतिरक्षा के सिद्धांत' को दोहराया। लेकिन, कॉमन कॉज, एक पंजीकृत सोसायटी (सुप्रा) (पैराग्राफ 78 देखें) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों की बैच ने कस्तुरी लाल (सुप्रा) में दिये गये फैसले का पालन नहीं किया और कहा कि कस्तुरी लाल (सुप्रा) में प्रतिवादीत संप्रभु शक्ति का सिद्धांत अब कल्याणकारी राज्य में उपलब्ध नहीं है।

20. रुदुल साह (सुप्रा) के मामले में, 14 वर्षों से अधिक समय तक जेल में अवैध हिरासत के लिए मुआवजे की मांग करते हुए सुप्रीम कोर्ट में दायर एक रिट याचिका में, सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि भारत के संविधान के 21 के तहत गारंटीकृत अधिकार के उल्लंघन को रोकने के लिए न्यायपालिका के लिए एकमात्र प्रभावी उपाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत मुआवजे का भुगतान है और निम्नानुसार टिप्पणी की:-

“हालांकि अनुच्छेद 32 का उपयोग अधिकारियों और दायित्वों के प्रवर्तन के विकल्प के रूप में नहीं किया जा सकता है, जिन्हें अदालतों की सामान्य प्रक्रियाओं, जैसे धन के दावों के माध्यम से प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है, इस अनुच्छेद के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए सुप्रीम कोर्ट धन के भुगतान के लिए आदेश पारित कर सकता है यदि ऐसा आदेश मौलिक अधिकार से वंचित करने के परिणामस्वरूप होने वाली प्रकृति का है।

*** **

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के पक्ष में मुआवजा देने से सुप्रीम कोर्ट का इनकार, उसके स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के प्रति मात्र दिखावा होगा, जिसका राज्य सरकार ने घोर उल्लंघन किया है। यदि सुप्रीम कोर्ट की शक्ति अवैध अभिरक्षा से रिहाई के आदेश पारित करने तक सीमित हो, तो अनुच्छेद 21 अपनी महत्वपूर्ण उद्देश्य से वंचित हो जाएगा। उस अधिकार के उल्लंघन को रोकने और अनुच्छेद 21 के उचित अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए न्यायपालिका के पास एकमात्र प्रभावी तरीका है, मौद्रिक मुआवजे के भुगतान में उल्लंघनकर्ताओं को दंडित करना। इस प्रकार, मुआवजे का अधिकार राज्य के साधनों के गैरकानूनी कृत्यों के लिए कुछ हद तक उपशामक है। इसलिए, राज्य को अपने अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता के अधिकारों को पहुंचाए गए नुकसान की भरपाई करनी चाहिए। वह इन अधिकारियों के खिलाफ सहारा ले सकता है।”



21. इसी तरह, नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य¹⁴ के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या मौलिक अधिकार के उल्लंघन के लिए मुआवजा का संवैधानिक उपाय, निजी कानून में नुकसान के लिए उपाय से अलग है और इसके अतिरिक्त है और इस प्रकार टिप्पणी:-

“अनुच्छेद 32 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा कार्यवाही में मुआवजे के पुरस्कार, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए सख्त दायित्व पर आधारित सार्वजनिक कानून में उपलब्ध एक उपाय है, जिस पर संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत लागू नहीं होता है, भले की यह अपकृत्य पर आधारित कार्यवाई में निजी कानून में बचाव के रूप में उपलब्ध हो। मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के उल्लंघन के लिए मुआवजे के लिए सार्वजनिक कानून में दावा, जिसकी सुरक्षा संविधान में गारंटी दी गयी है, ऐसे अधिकारों के प्रवर्तन और संरक्षण के लिए एक स्वीकृत उपाय है, और मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए प्रदान किये गये संविधानिक उपाय का सहारा लेकर सख्त दायित्व पर आधारित ऐसा दावा, मौलिक अधिकार के उल्लंघन के परिणामस्वरूप अपकृत्य के लिए निजी कानून में नुकसान के लिए उपाय से अलग है और इसके अतिरिक्त है।”

22. डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य¹⁵, के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने गिरफ्तारी और अभिरक्षा के मामलों में पालन किए जाने वाले कुछ सिद्धांत निर्धारित किये हैं।

23. इसी तरह, चेयरमेन, रेल्वे बोर्ड और अन्य बनाम चंद्रिमा दास (श्रीमती) और अन्य¹⁶ के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में सार्वजनिक कानून उपाय उपलब्ध होगा, और इस प्रकार टिप्पणी की:-

“जहां सार्वजनिक अधिकारी शामिल हैं और मामला मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रवर्तन से संबंधित है, तो निजी कानून के तहत नुकसान के लिए मुकदमा दायर किये जाने के बावजूद भी सार्वजनिक कानून के तहत उपाय उपलब्ध होगा। सार्वजनिक कानून उपायों को दायरों में भी बढ़ाया गया है, और न्यायालय

14 (1993) 2 SCC 746

15 1997) 1 SCC 416

16 2000) 2 SCC 465



याचिकाकर्ता को मुआवजा दे सकती है, जिसने सरकारी अधिकारियों के हाथों अत्याचारपूर्ण कृत्यों के कारण व्यक्तिगत चोटें झेली हैं।”

24. रुदुल साह (सुप्रा) और नीलाबती बेहरा (सुप्रा) में निर्धारित प्रस्तावों का सर्वोच्च न्यायालय के उनके माननीय न्यायाधीशों द्वारा पी.ए. नारायण बनाम भारत संघ और अन्य¹⁷ एमएस ग्रेवाल बनाम दीप चंद सूद¹⁸, भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य¹⁹, श्रीमती कुमारी बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य²⁰, सहेली, एक महिला संसाधन केन्द्र बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली नगर निगम²¹, दिल्ली बनाम उपहार त्रासदी पीड़ित संघ और अन्य²², और महमूद नैयर आजम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य²³, में सिद्धांत रूप में पालन किया गया है।

25. इस प्रकार, उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपत्य द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में, अब यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के तहत सार्वजनिक कानून के तहत, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार यानी जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन को झेलने वाले पीड़ित (पीड़ितों) को मुआवजा देने पर विचार कर सकता है और प्रदान कर सकता है। तदनुसार, इस प्रश्न का उत्तर यह मानते हुए दिया जाता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार के उल्लंघन के लिए मुआवजे का दावा करते हुए दायर वर्तमान रिट याचिका, स्वीकार्य है।

प्रश्न क्रमांक 3 का उत्तर:-

26. उपर्युक्त निर्धारण मुझे अगले प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि क्या जीवन का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में, जिसे भाग III, मौलिक अधिकारों में प्रदान किया गया है, यह प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे भारत सहित सभी सभ्य देशों में स्वीकार, मान्यता और लागू किया गया है। अनुच्छेद 21 का उद्देश्य नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में कार्यपालिका द्वारा कानून के अनुसार और उसके प्रावधानों

17 AIR 1998 SC 1659

18 (2001) 8 SCC 151

19 AIR 1986 SC 494

20 AIR 1992 SC 2069

21 1990) 1 SCC 422

22 (2011) 14 SCC 481

23 2012) 8 SCC 1



के अनुरूप और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार हस्तक्षेप को रोकना है। जीवन का अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता मूल मानवाधिकारों में से एक है और यहां तक कि राज्य को भी उस अधिकार का उल्लंघन करने का कोई अधिकार नहीं है। (सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य²⁴देखें।) स्वतंत्र के रूप से घूमने का अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का एक गुण है। मेनका गांधी (सुप्रा) देखें।

27. इसी तरह, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित “जीवन के अधिकार” का अर्थ केवल जीवित रहने या पशुवत् अस्तित्व से कहीं अधिक है। (देखें महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रभान ताले²⁵।) इस अधिकार में मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार और इसके साथ जुड़ी सभी चीजें शामिल हैं, जैसे कि जीवन की बुनियादी जरूरतें जैसे की पर्याप्त पोषण, कपड़े और सिर पर छत और पढ़ने, लिखने और खुद को अलग-अलग रूपों में अभिव्यक्त करने, स्वतंत्र रूप से घूमने और साथी मनुष्यों के साथ घुलने-मिलने की सुविधाएँ। (देखें फ्रांसिस कोरली मुलिन बनाम प्रशासक, केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली²⁶, ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन²⁷, और दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम डी.टी.सी. मजदूर कांग्रेस²⁸)। खडक सिंह बनाम यूपी राज्य²⁹, के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि पुलिस द्वारा अनुचित घर का दौरा अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना जा सकता है। उपहार त्रासदी पीड़ित एसोसिएशन मामले (सुप्रा) में, सुप्रीम कोर्ट ने देखा है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत “जीवन का अधिकार” संविधान के तहत संरक्षित और संरक्षित सबसे पवित्र अधिकार है, जिसका उल्लंघन हमेशा कार्यवाही योग्य है और इसके लिए कार्यवाही की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार यह निहित है कि जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार में मानव सम्मान के साथ जीने का अधिकार शामिल होगा और जीवन के अधिकार का किसी भी प्रकार से उल्लंघन या हनन गंभीर नागरिक परिणाम उत्पन्न करेगा और उस पर कार्यवाही की जा सकेगी।

28. इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों और उपर्युक्त निर्णयों से यह भली-भांति स्थापित हो चुका है कि यदि राज्य या उसके अधिकारियों की अवैध कार्यवाही से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत अधिकार का हनन हुआ है, हालांकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता को हुए नुकसान की भारपाई धन के रूप में नहीं की जा सकती।

24 AIR 2011 SC 312

25 (1983) 3 SCC 387

26 (1981) 1 SCC 608

27 AIR 1986 SC 180 (paras 33 & 34)

28 AIR 1991 SC 101 (paras 223, 224 and 259)

29 AIR 1963 SC 1295



29. निष्कर्ष में, यह माना जाता है कि जीवन का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार है और इसके उल्लंघन के लिए, याचिकाकर्ता उन प्रतिवादियों से मौद्रिक मुआवजे का हकदार है जो इसके उल्लंघन के लिए जिम्मेदार हैं। तदुसार यह माना जाता है।

प्रश्न क्रमांक 4 का उत्तर:-

30. **हुसैनारा खातून** (सुप्रा) मामले में, जिसमें विचाराधीन बंदियों को उस अवधि से अधिक समय तक हिरासत में रखा गया था, जितनी अवधि तक उन्हें दोषी ठहराया जा सकता था, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पृष्ठ 1819 के पैरा 2 में इस प्रकार कहा था:-

“विचाराधीन कैदी, जिन पर कई अपराधों का आरोप है और जिन्हें अधिकतम अवधि के लिए हिरासत में रखा गया है, जिसके लिए उन्हें दोषी ठहराए जाने पर सजा दी जा सकती है, भले ही उन्हें दी गई सजा एक साथ न होकर लगातार हो, उन्हें एक पल के लिए भी जेल में रहने की अनुमति नहीं जानी चाहिए, क्योंकि हिरासत में इस तरह की निरंतरता न केवल मानव सम्मान का स्पष्ट रूप से उल्लंघन होगा, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उनके मौलिक अधिकार का भी उल्लंघन होगा।”

31. इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करना एक गंभीर मामला है और अधिकार से वंचित करने में शामिल व्यक्तियों की उदासीनता और लापरवाही की आलोचना की है। किसी व्यक्ति की अनधिकृत हिरासत मानवीय गरिमा के दायरे के खिलाफ है और ऐसी हिरासत में बने रहना न्याय से वंचित करने के बराबर है।

32. **विजय कुमार गुप्ता बनाम राज्य एवं अन्य**³⁰ के मामले में पटना उच्च न्यायालय ने माना है कि किसी कैदी को उसकी सजा की अवधि से अधिक समय तक हिरासत में रखना उसके जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है और इस तरह वह मौद्रिक मुआवजे का हकदार है और आगे माना कि अभियोजन अधिकार और न्यायालय दोनों ही किसी भी अपराध के लिए सजा की अवधि से अधिक समय तक उसके लगातार अभिरक्षा में रहने से अनभिज्ञ रहे।



33. इसी प्रकार भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य³¹ के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने भीम सिंह को 45 दिनों की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में अवैध रूप से रखने के लिए आर्थिक मुआवजे के रूप में 50,000 रुपये का जुर्माना देने का आदेश दिया।

34. उपयुक्त निर्णयों में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए, वर्तमान मामलों के तथ्यों पर लौटते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता विचाराधीन कैदी के रूप में 4 वर्ष, 6 माह एवं 7 दिन की अवधि तक जेल में रहा, जबकि उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420/34 एवं धारा 120 बी के अंतर्गत अपराधों के लिए 3 वर्ष की सजा (अलग-अलग) दी गयी है तथा दोनों सजाएं साथ-साथ चलनी हैं, इस प्रकार वह संबंधित विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा दी गयी सजा से अधिक समय (एक वर्ष एवं छः माह) जेल में रहा, जिसका कारण विचारण में विलम्ब होना था, जबकि इस न्यायालय ने दिनांक 22.04.2013 एवं 24.06.2014 को जमानत आवेदनों पर सुनवाई करते हुए दो बार विचारण मजिस्ट्रेट को विचारण शीघ्र समाप्त करने का निर्देश दिया था, जिसका कारण याचिकाकर्ता को वास्तविक सजा से अधिक अवधि तक जेल में रहना पड़ा जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अंतर्गत प्रदत्त शीघ्र विचारण के अधिकार का उल्लंघन किया है और जिसके लिए वह आर्थिक मुआवजे का हकदार है।

35. अब सवाल यह है कि याचिकाकर्ता को 18 महीने (यानी 2015-16) की अवधि के लिए गैरकानूनी अभिरक्षा में रखने के लिए कितनी राशि का मुआवजा मिलना चाहिए। बार में कहा गया है कि सरकारी अधिसूचना के अनुसार वर्ष 2015-2016 में अर्धकुशल श्रमिक की मासिक मजदूरी 10,400=00 प्रति माह थी, इस प्रकार याचिकाकर्ता 10,400x18=1,87,200/- के साथ आज से भुगतान की तारीख तक 6% ब्याज के साथ संयुक्त रूप से और अलग-अलग हकदार होगा, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 और 4 आज से 30 दिनों की अवधि के भीतर जमा करेंगे।

36. रिट याचिका को उपर बतायी गयी सीमा तक स्वीकार किया जाता है। यह न्यायालय श्री प्रसून अग्रवाल, अधिवक्ता/ न्यायमित्र द्वारा प्रदान की गयी सहायता की सराहना करता है।

एसडी/-
(संजय के अग्रवाल)
न्यायाधीश



छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय बिलासपुर
रिट याचिका (सीआर.) संख्या 629/2020

याचिकाकर्ता

नितिन आर्यन @ सतीश कुमार सोनवानी

बनाम

उत्तरवादी

छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

हेड-नोट

(हिन्दी)

शीघ्र विचारण का अधिकार निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार में निहित है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का भाग है।

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही



अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु
उसे ही वरीयता दी जाएगी।

